स्वातन्त्र्यसम्भवम् : द्वितीयः सर्गः

(१-४५ श्लोक)

(९-२४ तथा ३४-४५ श्लोकों का गंभीर अध्ययन एवं शेष श्लोकों का द्रुतपाठ)

वन्दामहे पद्मदलाभिरूपां पञ्चप्रशाखीं कविनायकानाम्।
विवर्तितेऽर्थात्मतया स्वयं वै यामाश्रिता काचन सूक्तिदेवी।।१।।

हे सूक्ति देवी (सरस्वती), जिन पर आश्रित होकर स्वयं परिवर्तित होते हैं ऐसे (अर्थप्रदायक) कमलदलरूपी पञ्चशाखाओं वाले कवियों के नायक विनायक (श्रीगणेश) को हम प्रणाम करते हैं अर्थात् मैं (रेवा प्रसाद द्विवेदी) प्रणाम करता हूँ।

नमामि तां निर्झरिणीं कवीनामाकाशगङ्गां नु विशुद्धिमुग्धाम्।
यत्कुक्षिसूताऽक्षरपद्ममालां वाग्देवता श्रीरिवमूर्ध्नि धत्ते।।२।।

मैं कवियों की उस विशुद्ध मुग्ध निर्झरिणी आकाशगंगा (वाक्देवी) को प्रणाम करता हूँ जो देवी सरस्वती की कुक्षिसूत अक्षरमाला रूपी वागैश्वर्य को अपने सिर पर धारण करते हैं अर्थात् उन सरस्वती पुत्रों को मैं नमन करता हूँ जो देवी सरस्वती के समान कमल सदृश अक्षरमालाश्री से सम्पन्न हैं।

तां काल कालीमथ रात्रिरात्रिं नुग्नो हृदा काञ्चन कालरात्रिम्।
हिरण्यगर्भश्रियमुत्प्रसूतो या पुष्पलक्ष्मीं नु वसन्तलक्ष्मीः।।३।।

इसके बाद मैं उस कालरात्रि को हृदय से प्रणाम करता हूँ जो काल से भी भयंकर काली है, हिरण्यगर्भ रूपी श्री को उत्पन्न करने वाली वह पद्मा (कमल पर विराजने वाली) निश्चित रूप से वसन्तलक्ष्मी है।

तामेव काञ्चिन्नु कालरात्रिं श्रीदेवी कुक्षिगृहे स्फुरन्तीम्।
गोपाङ्गनाचीरहरो मुरारिः स्मरारि साक्ष्ये परिपस्पृशीति।।४।।

उस कालिरात्रि को मैं प्रणाम करता हूँ जो गोपियों के चीर हरने वाले (चुराने अथवा छिपानेवाले) श्रीदेवी की कोख से उत्पन्न होने वाले कामदेव के शत्रु मुरारि (कृष्ण) के जन्म की साक्षी है।

चराचरस्थावरजङ्गमाङ्के विभावनाख्यां प्रकृतिं नुमस्ताम्।
क्विप्प्रत्ययार्थाध्यवसायभूमिर्भूत्वाऽपि या संश्रयते न नच्विम्।।५।।

मैं विभावना नामक उस प्रकृति को प्रणाम करता हूँ जिनकी गोद में समस्त चर-अचर, स्थावर, जङ्गम, अगुण-सगुण क्विप् प्रत्यय, अर्थ, अध्यवसाय, भूमि

Shot on Y83 Pro
vivo dual camera

वाली, अपने तप से शिव को प्रसन्न करने की इच्छा वाली, शिव से प्रेम करने वाली, शिव को पति रूप में प्राप्त करने हेतु पके हुए स्वयं गिरे हुए पत्तों को भी न खानेवाली (पीले पत्तों का भी त्याग करने के कारण 'अपर्णा' नाम वाली) पार्वती की कठिन तपस्या से विरत करने हेतु ब्रह्मचारी का रूप धारण किया था अब पुनः उसे तप करने से रोकने हेतु शीघ्रता करो।

त्वं सांख्ययोगी त्वमु कर्ममार्गी त्वं भक्तियोगी पुरुषोत्तमस्त्वम्।
किं केन कस्मै स्वहिताय कार्यमित्यर्थनिर्णीतिमखे मखी त्वम्।।१२।।

तुम्हीं सांख्ययोगी हो, तुम्हीं कर्ममार्गी हो, तुम्हीं भक्तियोगी हो, तुम्हीं पुरुषोत्तम हो। क्या, किसने, किसके लिए? तुमने अपने हित के लिए यज्ञादि कार्य का निश्चय किया है क्योंकि तुम सर्वव्यापी परमेश्वर हो। तुम्हीं यज्ञ हो, तुम्हीं यज्ञकर्ता हो, तुम्हीं यज्ञ की हवि स्वीकार करने वाले हो। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

त्वं वै सुपर्णोऽसि हिरण्यवर्णस्त्वं संविदो ह्लादगुणो रसोऽसि।
त्वमेव बिम्बस्य परात्परस्यच्छायामयः कश्चन विग्रहोऽसि।।१३।।

तुम्हीं सुपर्ण हो, तुम्हीं हिरण्यवर्ण हो, तुम्हीं संविद हो एवं ह्लादगुणयुक्त रस भी तुम्हीं हो। परात्पर (परमपुरुष) की छाया रूप बिंब में भी तुम्हीं हो। यह सम्पूर्ण संसार तुम्हारा ही विग्रह (रूप) है।

त्वमिक्षुदण्डोऽसि जगत्सवित्र्यामातुः कराभ्यामुपलाल्यमानः।
त्वमेव तस्याः खलु पुस्तकस्य सिद्धान्तभूतोऽसि परात्परोऽर्थः।।१४।।

जगत् की माता सावित्री के तुम्हीं इक्षुदण्ड हो जो अपने हाथों से जगत् का पालन-पोषण करने वाली है। पुस्तक में वर्णित सिद्धान्तभूत और उनका वह परात्पर अर्थ भी तुम्हीं हो अर्थात् तुमने न केवल मनसा-वाचा बल्कि कर्मणा भी अपने सिद्धान्तों को जगत् में प्रतिष्ठित किया है।

चिन्तामणिद्वीपगतेऽपि नीपे शुकोऽसि मातुः स्तवने नदीष्णः।
वितर्दिकायामिह रत्नमय्यां नृत्यन् मयूरीदयितोऽप्यसौ त्वम्।।१५।।

चिन्तामणिद्वीप जाकर वहाँ पहाड़ की तलहटी में अथवा कदम्ब वृक्ष पर माता का स्तवन करने वाले शुक भी तुम्हीं हो तथा वहाँ रत्नमयी वेदी पर [illegible]रती हुई वह मयूरी-प्रियमयूर भी तुम्हीं हो।

द्विधाविभक्तावपि निर्विभागौ पुमांश्च योषिच्च तवैव भागौ।
तयोर्द्व[illegible] विभातिर्विभातयोगः खलु विश्वलक्ष्म्याः।।१६।।

Shot on Y83 Pro
vivo dual camera

स्त्री और पुरुष (अर्धनारीश्वर) रूप में दो भागों में विभक्त होते हुए भी निर्भाग ही उन दोनों का जो द्वैतमयी रूप विभूतियोग जगत् में प्रसिद्ध है वह तुम्हारा (विश्वलक्ष्मी का) ही विभूतिरूप है।

जिनोऽसि चेत् त्वं स हि संप्रबुद्धो बुद्धोऽप्यसौ त्वं हि तयोश्च या चित्।
आविष्टमार्गान्तरदेशिकात्मा साऽपि त्वमेवासि सनातनात्मा।।१७।।

तुम्हीं जिन (अर्थात् ज्ञान, चैतन्य) हो, तुम्हीं प्रबुद्ध एवं बुद्ध हो, तुम्हीं वर्धमान (जैनधर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर) तथा बुद्ध (बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्माबुद्ध) हो, इन दोनों के अतिरिक्त आविष्टमार्ग वह सनातन आत्मा (सनातन धर्म भी तुम्हीं हो।)

त्वं वर्धमानोऽसि जितान्तरात्मा युञ्जानयोगी त्वमसि प्रबुद्धः।
त्वं वै दुकूलोऽसि धृतः शिवाभ्यां स हंसयुग्मः परिणीति मद्धयाम।।१८।।

तुम्हीं वर्धमान हो, अन्तरात्मा (अपनी इन्द्रियों) पर विजय पाने वाले प्रसिद्ध योगी गौतम बुद्ध तुम्हीं हो। विवाह के समय शिव-पार्वती के द्वारा धारण किया हुआ हंसयुगल चित्रित दूकूल (वसन) भी तुम्हीं हो, युग्मरूप (अर्धनारीश्वर) तुम्हें मेरा प्रणाम है अर्थात् बाघम्बरधारी अर्धनारीश्वर (शिव) को मेरा प्रणाम है।

पक्षैर्विनाप्यभ्रचरायमाण! क्षोणीचरिष्णो! सलिलभ्रमिष्णो।
धिग् धिक् स यक्षोऽपि निजाधिकार प्रमत्त चित्तस्त्वमुबोभवीषि।।१९।।

बिना पंखों (डैनों) के शुभ्र आकाश में विचरण करने वाले, धरती पर चलने वाले, पानी में भ्रमण करने वाले तुझ उस यक्षको धिक्कार है जो अपने अधिकार के कारण प्रमत्त चित्तवाला शापित हुआ।

नित्यप्रवृत्ते, शृणु, सृष्टियज्ञे वै वृणीते पिशिताशनत्वम्।
सज्जा सदा तिष्ठति तं वरीतुं कृतान्तदंष्ट्रापि करालकाया।।२०।।

हे शिव, सुनें! आप सदा सृष्टिरूपीयज्ञ (रचनाकर्म) में प्रवृत्त रहते हैं; सज्जा सदा आपका वरण करने के लिए लालायित रहती है। सृष्टि यज्ञ में जो कोई भी मांसभक्षी बनता है यमराज की कराल काया (विकराल जीभ) उसका भक्षण करने के लिए सदा तत्पर रहती है।

न भूमिगर्भो न च देवमार्गस्तवास्ति काम्यः पुरुषोत्तमस्य।
त्वत्सौख्यमार्गप्रविधारणायां तौ कौ त्वमेवासि तयोस्तु भूमिः।।२

पुरुषोत्तम आप के द्वारा कुछ भी काम्य नहीं है– न तो भूमिगर्भ और देवमार्ग। आपके सौख्यनिर्णय में देवमार्ग और भूमिगर्भ-ये दोनों कौन हैं? भी आप ही हो। आपके सौख्यभाव के कारण आपसे इतर कुछ भी न

आनन्दमाध्वीकसमुद्र एष त्वय्येव नित्यं हि जरीजृभीति।
कस्तूरिकां नाभिगतां परत्रान्विष्यन् मृगस्त्वं न च बोभवीमि॥२२॥

आनन्दकन्द भगवान् का आश्रयस्थल समुद्र तुम में ही है ठीक वैसे ही जैसे मृग की नाभि में कस्तूरी होती है और वह कस्तूरी की खोज में अन्यत्र (इधर-उधर) भटकता रहता है। परन्तु तुम वह मृग नहीं हो। कहने का तात्पर्य यह है कि सबकुछ तुम में है, तुम सबमें हो, सर्वत्र हो, तुमसे इतर कुछ भी नहीं है।

इत्यादिशन्तीव तरङ्गहस्तैर्भागीरथी यत्र मनुष्य सृष्टौ।
लक्ष्मीशिवाभ्यां वरिवस्यमानं सूतेतरां हरिहरं शरीरम्॥२३॥

तरङ्गरूपी हाथों से आदेश देते हुए भागीरथी जहाँ मनुष्य की सृष्टि में लक्ष्मी शिवा के लिए हरिहर रूप विग्रह प्रदान करती है।

सा विश्वनाथस्य पुरी विशाला गीर्वाणवाणीकलितालवाला।
मोक्षप्रसूः कल्पलतैव साक्षाच्छुकैश्च हंसैश्च धृतप्रवाला॥२४॥

यह विश्वनाथ की वही विशाल नगरी है जो मोक्षप्रदायिनी एवं कल्पलता के समान है। जहाँ सदा गीर्वाणवाणी गूँजती है, जो धन-धान्य (समृद्धि) से युक्त है, जहाँ हंस भी हीरे-मोती, मूँगा इत्यादि चुगते हैं।

अस्यां सदा जाग्रति हन्त तिस्रस्त्रिमार्गगानिर्व्यभिचारसङ्गाः।
भागीरथी चामरभारती च स्वातन्त्र्यदात्री करुणा च शम्भोः॥२५॥

शिव की इस नगरी में सदा त्रिमार्गगामिनी गंगा अनवरत बहती है– ये हैं पुण्यसलिला भागीरथी, अमरभारती (संस्कृत) और शिव की करुणा। तीनों ही स्वातन्त्र्यप्रदायिनी हैं।

छात्रालयी भूतसमस्तगेहा विद्यालयायन्ति हि यत्र रथ्याः।
काशी न सा कापि पुरी पुराणः स विश्वविद्यालय एव मुक्तेः॥२६॥

यह काशी विद्यालयमय हो गया है और यहाँ की गलियाँ विद्यालय और छात्रावासमय हो गए हैं। प्रायः हर घर में छात्रावास (पी॰ जी॰ Paying guest) है। मानो यह काशी पुराणों में वर्णित नगरी न होकर मुक्ति (मोक्ष) का विश्वविद्यालय बन गया है। (अर्थात् यह काशी पुराणों में वर्णित विश्वनाथ की वह नगरी नहीं है बल्कि यहाँ विश्वविद्यालय (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय एवं सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय इत्यादि) जैसे उच्च शैक्षणिक संस्थान हैं जिनमें दूर-दूर से विद्यार्थी (छात्र) पढ़ने हेतु आते हैं।)

ग्रन्था न यस्यां लिपिपत्ररूपास्ते ह्यत्र विज्ञानमया हि कोषाः।
ग्रन्थालयान्तकि तेन यस्यां स्वयं प्रकाशा विबुधा न गेहाः॥२७॥

विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय (पुस्तकालय) में सिर्फ लिपिबद्ध पुस्तक ग्रन्थ ही नहीं हैं अपितु यहाँ के आचार्य (शिवकुमारानन्द) विज्ञानमयकोश हैं [illegible] हैं) जिनके अंतःकरण में ग्रन्थालय है अर्थात् यहाँ के आचार्य उद्भट विद्वान् मानो ग्रन्थालय सदृश हैं।

गाङ्गं जलं यत्र धनं परार्ध्यं विश्वेश पूजैव हि यत्कुसीदम्।
यल्लेखरूपाश्च भवन्ति वेदाः स्वतः प्रमाणाक्षरवन्द्यभेदाः॥२८॥

गंगा जल ही जहाँ सबसे बड़ा धन है, विश्वेश्वर (महादेव) का पूजन ही सबसे बड़ा ब्याज (सुख) है, वेद जिनके रूपों का अक्षरों में वर्णन करते हैं (गुणगान करते हैं) वे स्वतः प्रमाणस्वरूप विश्वनाथ यहाँ विराजमान हैं।

अत्रास्ति विश्वेश्वर एव राजा माताऽन्नपूर्णैव हि यस्य कोषाः।
उत्कर्षसीमा खलु साऽस्य राज्ये कोषः स्वयं यद् वृणुतेऽत्र भिक्षुम्॥२९॥

विश्वेश्वर ही यहाँ के राजा हैं एवं माता अन्नपूर्णा जिसका अक्षय कोष (भण्डार) है। इस राज्य की सीमा उत्कर्ष पर है (निरंतर उन्नति की ओर अग्रसर है) एवं यहाँ के भिक्षुओं का वरण स्वयं कोष ही कर लेते हैं अर्थात् सर्वत्र समृद्धि है, खुशहाली है, याचक कोई नहीं है।

शास्त्रेषु सर्वेष्वनुपङ्क्तिविद्वान् गुरुर्जगत्याः कविता सुधाब्धिः।
महेश्वरानन्द सरस्वती यां सपापरीति स्म सुमेरुपीठात्॥३०॥

सर्वशास्त्रों में पारंगत, विद्वानों में अग्रगण्य, जगद्गुरु, कविता रूपी अमृतसागर महेश्वरानन्द सरस्वती सुमेरु पीठ को कभी सुशोभित किया करते थे।

मेरुर्यथा भूमिधराननेकान् भूमेर्धरान् दिक्षु विदिक्षु धत्ते।
शिष्यांस्तथा यः प्रतिमानभाजो धत्ते तमां स्माऽऽगमशास्त्रसिन्धून्॥३१॥

जिस प्रकार सुमेरु पर्वत विभिन्न दिशाओं में भूमियों को धारण करता है उसी प्रकार ये आचार्य (करपात्रीजी महाराज) आगम-शास्त्रादि सागर को धारण करने वाले (सभी विद्याओं के ज्ञाता) थे तथा प्रतिभाशाली छात्र रूपी सागर को ये धारण करते थे। अर्थात् इनके शिष्य विभिन्न दिशाओं में (देशों-विदेशों) में ज्ञान की ज्योति फैला रहे थे। (ज्ञान का अलख जगा रहे थे)।

गुरुस्तदीयः करपात्रभिक्षुः सनातनो धर्म इवाप्तदेहः।
प्रज्ञाविभूत्या सललाटनेत्रस्त्रिलोचनो यत्र बभूव साक्षात्॥३२॥

इनके गुरु स्वामी करपात्रीजी महाराज ऐसे थे मानो सनातन धर्म ने इनके शरीर में वास करना स्वीकार किया हो। सनातन धर्मस्वरूप दीप्त भाल करपात्रीजी महाराज अपनी प्रज्ञारूपी विभूति के कारण मानो साक्षात् त्रिलोचन

Shot on Y83 Pro
vivo dual camera

वेदार्थशास्त्रार्थविशुद्धसत्त्वा नित्यं नृलोकानुजिघृक्षया [illegible]।
भूमीतलस्योद्धरणाय यस्यां महावराहन्त्यपरेऽपि सन्त।।३३।।

ऐसा प्रतीत होता था मानो इस सन्त (करपात्रीजी महाराज) ने [illegible] शास्त्र इत्यादि के मर्म को (रहस्य को) मनुष्य को समझाने के लिए [illegible] (पृथ्वी के उद्धार) हेतु इस पृथ्वी पर महावराह (भगवान विष्णु के [illegible] अवतारों में से दूसरा अवतार) का रूप धारण किया हो।

कहने का तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर अनेक संत हुए जिन्होंने [illegible] वेद-वेदांग शास्त्र सम्मत उपदेश दिया, परन्तु करपात्री स्वामी जी का कार्य [illegible] उल्लेखनीय एवं सबसे विलक्षण था। जिस प्रकार भगवान विष्णु ने शूकर ([illegible]) का रूप धारण कर प्रलयकाल में जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर [illegible] कर जल से ऊपर लाया (बचाया) उसी प्रकार इस कलिकाल में करपात्री [illegible] महाराज ने मनुष्य को एक नई दिशा एवं दशा दी, सोच दिया, विचार दिया, [illegible] सुझाया।

अस्यां पुराऽजायत विप्रवंशे लक्ष्मीर्विलक्ष्मीकृत वैरिवंशा।
झांसीश्वरीति प्रथिताभिधानः स्वातन्त्र्यलक्ष्म्याः प्रथमोऽभिधानः।।३४।।

विप्रवंश में उत्पन्न लक्ष्मी (समुद्रपुत्री लक्ष्मी) के विपरीत विमल क्षत्रियवंश में उत्पन्न झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई नामवाली उस लक्ष्मी ने स्वतंत्रता संग्राम में इसी काशी में सर्वप्रथम दुश्मनों से लोहा लिया।

डोंढेति नाम्नः पितुरङ्कशय्यां या वै भजन्ती रुरुचेऽधिकाशी।
हिमाचलोत्सङ्गे निषण्णा त्रिलोकवन्द्या शिशुपार्वतीव।।३५।।

इसी काशी में ढोंढ़ा नामवाली वह लक्ष्मीबाई अपने पिता की गोद में वैसे ही पली-बढ़ी जिस प्रकार सुन्दरी त्रिलोकवन्द्या शिशु पार्वती अपने पिता हिमाचल की गोद में पली-बढ़ी।

वैदेशिकाणां क्षपणाय भूमीभृतां सितानां पिशिताशनानाम्।
या निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नात् सौदामनीव द्युतलात् पतन्ती।।३६।।

अत्याचारी विदेशी (अंग्रेजों) के अधिकार से पृथ्वी (अपने राज्य) को बचाने हेतु उनकी गुलामी (अधीनता) न स्वीकार करने वाली जिस लक्ष्मीबाई को विधाता ने यत्नपूर्वक बनाया था वह लक्ष्मीबाई उन पर द्युलोक से गिरती हुई बिजली के समान टूट पड़ी।

या देहमात्रेण बभव नारी चित्तेन शौर्य्येकधनेन किन्तु।
[illegible] प्रबल नरत्वं तस्यां जजागार पुलोमजावत्।।३७।।

[illegible] रानी लक्ष्मीबाई [illegible] (पुरुषत्व) [illegible] (शची) के समान [illegible] है।

अस्मीति यद्: स भृशं प्रशस्यो [illegible]।
शरीरबन्धं निजमातृभूमिस्नेहातिशीलि: [illegible]।।३८।।

(बनारस का) अस्सीघाट अत्यन्त प्रसिद्ध है जहाँ [illegible] में) लक्ष्मीबाई विराजमान हैं (उस देशभक्त लक्ष्मीबाई की मूर्ति है) [illegible] मातृभूमि हेतु स्नेहातिशयता प्रसिद्ध है।

तां कालरात्रीमिव लेलिहानां दूतीं शिवस्येव करालवृत्ताम्।
माता यशोदेव महानुभावामलालयत साध्वसिनी तदम्बा।।३९।।

जिस प्रकार माता यशोदा ने महानुभाव (कृष्ण-कन्हैया) का लालन-पालन किया उसी प्रकार उस पतिव्रता जगदंबा (लक्ष्मीबाई) की [illegible] शिवदूती सदृश थी। कालरात्रि के समान कराल, उसने दत्तक पुत्र का लालन-पालन किया।

वात्सल्यधारामतिवाह्य तस्यां बभूव तातस्य हृदि प्रकाशा।
आश्चर्यलक्ष्मीः प्रतिबाललीलं श्रीमर्यादामिव मेकलाद्रेः।।४०।।

आश्चर्य है जिस प्रकार नर्मदा ने बच्चे का अत्यंत वात्सल्य (प्रेम) से लालन-पालन किया, उसी प्रकार उस लक्ष्मीबाई ने अपने दत्तक पुत्र के प्रति वात्सल्य की धारा बहाकर अपने पति के हृदय को प्रसन्न कर दिया (जीत लिया)।

जातेति यां नो पितरौ वराकौ व्यभावयेतां तनया कदापि।
यौ चिन्तयामासतुरागतेयं दिव्यानुभावा ननु नौ कुतश्चित्।।४१।।

बेचारे माता-पिता जो संतान न होने से अत्यंत व्याकुल (चिन्तित) थे, निश्चित ही पुत्री के होने पर उन्हें (कुछ) दिव्य अनुभव हुए (खुशी हुई)।

पुत्रीं हिमाद्रिर्नु सतीमुमेति रेवां न गङ्गेति च मेकलाद्रिः।
तातस्तदीयः परमाम्बिकां तां लक्ष्मीरिति व्याहरति स्म धीरः।।४२।।

जिस प्रकार धीर-गंभीर पिता हिमालय ने अपनी पुत्री को सती, उमा, [illegible] या रेवा (नर्मदा) समझा उसी प्रकार उस जगदंबा (परमाम्बिका) को उनके [illegible] पिता ने लक्ष्मी मानकर उसके साथ व्यवहार किया।

सा कल्पवल्ली वसुधातलस्य सा कामधेनुर्मनुजान्वयस्य।
चिन्तामणिर्भारतभाग्यलक्ष्म्या लक्ष्मीर्यथार्थायते स्म संज्ञाम्।।[illegible]

Shot on Y83 Pro
vivo dual camera

वह (लक्ष्मी बाई) पृथ्वी पर कल्पवृक्ष, मनुष्य जाति के लिए कामधेनु तथा चिन्तामणि थी। वह अपने नाम को सार्थक करने वाली थी। अर्थात् उसका भारत की भाग्यलक्ष्मी नाम सार्थक था।

शनैः शनैः सा ववृधेऽनघाङ्गी कौमारकह्लारसरोवराच्च।
प्रतिप्रपेदे नवयौवनाख्यं वासन्तिकं राज्यमतीव हारि।।४४।।

सरोवर में प्रस्फुटित कमलिनी के समान अनिन्द्यसुन्दरी वह कुमारी (लक्ष्मीबाई) धीरे-धीरे बड़ी होने लगी, उसने नवयौवन (युवावस्था) के वासन्तिक साम्राज्य में पदार्पण किया। उसका नवयौवन अत्यन्त मनोहारी (चित्ताकर्षक) था।

कुमार एषोऽस्ति कुमारिका वेत्येतन्न निश्चेतुमशाकि विज्ञैः।
निरीक्ष्य तां रत्नगतां नु पुत्रीं ज्योत्स्नाभराच्छादितगात्रलक्ष्मीम्।।४५।।

उसे देखकर यह कुमार है या कुमारी है (लड़का है या लड़की)— यह निश्चित करने में विद्वद्जन भी पहले सक्षम नहीं हुए। आभायुक्त उस लक्ष्मी के शरीर का भलीभाँति निरीक्षण करके यह पुत्री रत्न है– ऐसा वे निश्चय करते थे।

Shot on Y83 Pro
vivo dual camera